श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ महिम्नः सटीकः ।

महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी ।
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः ॥
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्
ममाप्येष स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः ॥ १ ॥

टी० । पुष्पदन्ताचार्य की प्रार्थना शिवजी के प्रति–हे हर जिसने तुम्हारी महिमा का पार नहीं पाया उस मनुष्य की की हुई स्तुति जो तुम्हारे योग्य हो तो ब्रह्मा आदि देवताओंने जो स्तुति की हैं वे भी निष्फल हों क्योंकि उन्होंने भी पार नहीं पाया है इससे सब मनुष्य वा देवता अपनी २ बुद्धि की पहुंच के अनुसार स्तुति करते हैं इस कारण हे दुःखहरण शिव इस स्तोत्रमें हमारी भी स्तुति का प्रारंभ निर्दोष हो। कदाचित् कोई कहे कि महिमाका पार क्यों नहीं जाना जाता इस कारण द्वितीय श्लोक है॥ १ ॥

अतीतः पंथानं तव च महिमा वाङ्मनसयो
रतद्व्यावृत्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि ॥
सकस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः

पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः ॥ २ ॥

टी०। हे भगवन् तुम्हारी महिमा वाणी वा मनकी प्रकृति से परे है और इन दोनों की प्रवृत्ति अर्वाचीन अर्थात् संसार के पदार्थों में होती है अर्थात् हे शिव! तुम से इधर की वस्तुओं को सब कोई जान सकता है वेद भी संदेह से ऊपर ही ऊपर तुमको वर्णन करते हैं जैसे कोई मनुष्य किसी से पूछे कि मोती कैसा है तो वह हाथ में रख कर दिखाता है इस प्रकार से वेद को सामर्थ्य नहीं है कि प्रत्यक्ष करके दे तो कौन तुम्हारी स्तुति कर सके वा गुण जान सके ॥ २ ॥

मधुस्फीता वाचः परमममृतं निर्मितवत-
स्तव ब्रह्मन् किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम् ॥
मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन् पुरमथन बुद्धिर्व्यवसिता ॥ ३ ॥

टी०। हे ब्रह्मन्! देवताओं के गुरु बृहस्पति जी की वाणी क्या तुमको कुछ आश्चर्यित नहीं करवा सक्ती है क्योंकि वे अमृत के तुल्य मधुर और कोमल २ अर्थात् सुंदर २ छन्द और अलङ्कार सहित वाणियों के कर्ता हैं यदि उनकी यह गति है तो मेरा क्या सामर्थ्य है हे त्रिपुरदहन कामदेव के दाहक मैं ने तो केवल तुम्हारे गुणों के वर्णन से अपनी वाणी को पवित्र करने को एक के निमित्त यत्न किया है ॥ ३ ॥

॥ऐश्वर्यं यत्तज्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्
त्रयीवस्तु व्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु ॥
अभव्यानामस्मिन् वरद रमणीयामरमणीं
विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः ४ ॥

टी० । हे वरद तीनों वेदकरके वर्णनीय जगत के उत्पत्ति रक्षा
प्रलयके कारण जो तुम्हारा ऐश्वर्य है सो रजोगुण सत्वगुण तमोगुण
विशिष्ट तीन शरीरों में वर्तमान है अर्थात् ब्रह्मा विष्णु शिव ये
तीनों तुम्हारीही सामर्थ्यसे उत्पत्ति स्थिति प्रलयको करते हैं हे
भगवन् ! इस संसारमें कोई २ मन्दमति मीमांसक आदि तुम्हा-
रे ऐश्वर्य की माया कल्पित है इत्यादि दोषों से निन्दा करते हैं
यह निन्दा तुम्हारे ऐश्वर्य में संभव नहीं हो सके है परन्तु
अभागी मनुष्यों को रमणीय लगे है ॥ ४ ॥

किमीहः किंकायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनं
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च ॥
अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः
कुतर्कोयं कांश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः ॥ ५ ॥

टी० । कोई २ मन्दमति संसार के अज्ञान के निमित्त
नरक में जानेको यह कुतर्क करते है कि यह ब्रह्मा चेष्टा वा श
। कोई उपाय वा और कोई निमित्त कारण इनके बिना ती

लोकों को उत्पन्न करते हैं यह कुतर्क तुममें संभव नहीं हो स
है क्योंकि तुम्हारा ऐश्वर्य तर्क करने के योग्य नहीं है तुम्ह
ऐश्वर्य को संसार उत्पन्न करने के लिये कोई सामग्री अपेक्षि
नहीं है ॥ ५ ॥

अजन्मानो लोका किमवयववन्तोपि जगता
मधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति ॥
अनीशो वा कुर्याद्भुवनजनने कः परिकरो
यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर संशेरत इमे ॥ ६ ॥

टी० । हे भगवन् भू आदि जो सात लोक हैं सावयव
इनकी उत्पत्ति क्या किसी से नहीं है जो २ अवयव सहित हैं
उत्पत्ति सहित हैं बिना चेतन अधिष्ठान के संसारी रचना सं
नहीं हो सक्ती और कदाचित् बिना ईश्वर के संसार की उत्प
है तो उसकी उत्पत्ति में क्या सामग्री अपेक्षित है जिस कार
मन्दमति मीमांसक आदि तुम्हारे होने में संदेह करते हैं अर्था
तुम्हारे होने में किसी प्रकार का संदेह नहीं है ॥ ६ ॥

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ॥
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥ ७ ॥

टी० । हे भगवन् वेद सांख्यशास्त्र न्याय पाशुपत वैष्णव मत ये पांचो भिन्न २ मार्ग का वर्णन करते हैं अपनी २ रुचि के अनुसार इन मार्गों में चलनेहारे मनुष्यों के परिणाम व गम्य एक तुम ही हो जैसे सीधे वा टेढ़े मार्ग में बहती हुई नदियों का गम्य एक समुद्र है ॥ ७ ॥

महोक्षः खट्वाङ्गं परशुरजिनं भस्मफणिनः
कपालं चेतीयत्तव वरद तंत्रोपकरणम् ।
सुरास्तां तामृद्धिं विदधति भवद्भ्रू प्रणिहिता
नहि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति ॥ ८ ॥

टी० । हे वरद तुम्हारे घर की सामग्री केवल इतनी वस्तु हैं महोक्ष अर्थात् बड़ा बैल खट्वांग अर्थात् दण्ड के ऊपर का अस्त्र कपाल फर्सा गजचर्म भस्म सर्प और कपाल परन्तु देवता केवल तुम्हारी दी हुई ऋद्धियों को भोगे हैं कदाचित् कोई यह कहै कि वे आपही ऋद्धियों को क्यों नहीं भोगे हैं तो विषयरूपी मृगतृष्णा परिपूर्ण ब्रह्म को भ्रमा नहीं सके है ॥ ८ ॥

ध्रुवं कश्चित् सर्वं सकलमपरस्त्वध्रुवमिदं
परो ध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये ॥
समस्तेऽप्येतस्मिन् पुरमथन तैर्विस्मित इव
स्तुवन् जिह्रेमि त्वां न खलु ननु धृष्टा मुखरता ॥

टी०। कोई २ बुद्धिमान् इस संसार को स्थिर औरकोई २ अस्थिर और कोई स्थिरास्थिर मिला हुआ वर्णन करते हैं इस संसार के स्थिर और अस्थिर और स्थिरास्थिर होने में प्रमाण के न मिलने में बड़ी भ्रमता में डूब कर हे भगवन् तुम्हारी स्तुति करता हुआ लज्जित होता हूं परन्तु मेरी वाचालता स्तुति करवा रही है ॥ ९ ॥

तवैश्वर्यं यत्नाद्यदुपरि विरिञ्चो हरिरधः
परिच्छेतुं यातावनलमनिलस्कन्धवपुषः ॥
ततो भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिश यत्
स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति ॥१०॥

टी०। हे भगवन् तुम्हारे ऐश्वर्य का छोर देखने को बड़े यत्न से विष्णु तो नीचे और ब्रह्मा जी ऊपर को गए तो भी वायुरूपी तुम्हारे स्वरूप को न प्राप्त हो सके फिर बैठ कर भक्ति और श्रद्धा से जब तुम्हारी स्तुति करने लगे तब तुम स्वयं प्रत्यक्ष हुए क्या तुम्हारी सेवा निष्फल होती है नहीं सफल ही होती है॥१०॥

अयत्नादापाद्य त्रिभुवनमवैरव्यतिकरं
दशास्यो यद्बाहूनभृत रणकण्डूपरवशान् ॥
[illegible]ः पद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबलेः।
[illegible]रायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर विस्फूर्जितमिदम् ॥ ११ ॥

टी० हे त्रिपुरासुर के मारक हे शिव रावण ने अपने शिररूपी कमलों से तुम्हारे चरणों का जो पूजन किया इस दृढ़ भक्ति के प्रताप से तीनों लोकों को विना परिश्रम निर्वैरि अर्थात् निष्कंटक करके अपनी भुजाओं को जो केवल संग्राम को चाहती थीं धारण किया है ॥ ११ ॥

अमुष्य त्वत्सेवासमधिगतसारं भुजवनं
बलात्कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः ॥
अलभ्या पातालेप्यलसचलिताङ्गुष्ठशिरसि
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद्‌ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः ॥१२॥

टी० इस रावण ने तुम्हारी सेवा के प्रताप से बड़ा बलवान भुजों का समूह प्राप्त किया। जिसके बल से तुम्हारे निवास कैलास को भी उठा लिया फिर जब आपने स्वाभाविक ही पांव के अंगूठे से पर्वत को दाबा तब रावण की प्रतिष्ठा पाताल तक न हुई क्योंकि दुष्ट जन बड़े अभिमान को प्राप्त होता है ॥ १२ ॥

यदृद्धिं सुत्राम्णो वरद परमोच्चैरपि सतीं
मधश्चक्रे बाणः परिजनविधेयस्त्रिभुवनः ॥
न तच्चित्रं तस्मिन् वरिवसितरि त्वच्चरणयो
र्न कस्याप्युन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः॥ १[illegible]

टी०। हे भगवन् तुम्हारे चरणों के पूजन के प्रतापसे [illegible]

को वशीभूत करके इन्द्र के परम उच्चपद को बाणासुर ने जो तिरस्कृत किया तो क्या आश्चर्य है क्योंकि तुम्हारे सामने जो शिर झुकाता है सो किसी एक वृद्धि के लिए कारण नहीं है किन्तु सबही वृद्धि के लिए ॥ १३ ॥

अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुरकृपा
विधेयस्यासीद्यस्त्रिनयन विषं संहृतवतः ॥
स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो
विकारोपि श्लाघ्यो भुवनभयभङ्गव्यसनिनः । १४ ॥

टी० हे भगवन् जिस समय समुद्र से हलाहल बिष निकला तो देवता और राक्षसों को यह भय हुआ कि कहीं असमय में संसार का प्रलय न हो जाय, तब कृपा करके उनकी रक्षा के लिये आपने जो महाघोर विष कंठ में धारण किया सो आपके कंठ में विष भी अत्यन्त शोभा दे रहा है ॥ १४ ॥

असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे
निवर्तन्ते नित्यं जयति जयिनो यस्य विशिखाः ॥
स पश्यन्नीश त्वामितरसुरसाधारणमभूत
स्मरः स्मर्तव्यात्मा नहि वशिषु पथ्यः परिभवः

टी० हे ईश जिसके बाण ऐसे प्रबल हैं कि देवता राक्षस करके व्याप्त भी संसार है तौ भी जिसको लगते हैं बिना प्रयोजन सिद्ध किये निवृत्त नहीं होते, हे शिव तुम को भी

और देवताओं के तुल्य साधारण देखने से उस कामदेव का नाम मात्र बाक़ी रह गया अर्थात् तुम्हारे तृतीय नेत्र से उसका शरीर भस्म हो गया क्योंकि यह बात प्रत्यक्ष है कि जितेन्द्रियों का अनादर करना सुखकारी नहीं होता ॥ १५ ॥

महीपादाघाताद् व्रजति सहसा संशयपदं
पदं विष्णोर्भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणम् ॥
मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता ॥ १६ ॥

टी०। हे भगवन् तुम संसार की रक्षा के निमित्त नृत्य करते हो अर्थात् राक्षसों को नृत्यके आनन्द में डालकर उनसे रक्षा करते हो और नृत्य के समय चरणोंकी धमकसे पृथ्वी यह सन्देह कर[illegible] है कि मैं टूटी जाती हूं वा पाताल में घुसी जाती हूं इसी प्रक[illegible] भुजाओं के घुमानेसे विष्णु के स्थान आकाश में तारागण खंड[illegible] होगए और इसी प्रकार लम्बा २ शिखा का वार झटकार[illegible] स्वर्ग आपको कठिनता से थाम रहा है, हे शिव तुम्हारी [illegible] बड़ी विलक्षण है ॥ १६ ॥

वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः
प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते
जगद् द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि-

त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिम दिव्यं तव वपुः ॥ १७ ॥

टी० । हे शिव तारागणों करके चमकता हुआ जल समूह जो आकाश पर्य्यन्त ब्याप्त हो रहा है सो आपके शिर पर सूक्ष्म जल कणिका के समान दृष्ट अवै है परंतु आपने उतनेही जल से समुद्र करके इस महाद्वीपाकार संसार को चारों ओर से घेर लिया है सो हे भगवन् आपके दिव्य शरीरका विस्तार इसी दृष्टान्त से अनुमान करनेके योग्य है ॥ १७ ॥

रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरहो
रथाङ्गे चंद्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति ।
दिधक्षोस्ते कोयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि-
र्विधेयैः क्रीडंत्यो न खलु परतंत्राः प्रभुधियः ॥ १८ ॥

टी । हे भगवन् तृण तुल्य त्रिपुरासुर के नाश करनेको जो ...ने इतना आडम्बर अर्थात् पृथ्वीका रथ नियन्ता ब्रह्माजी ...ल पर्वत का धनुष रथ के चक्र अर्थात् पहिये चन्द्रमा और ...विष्णु रूपी बाण रचा है सो क्या तृण तोड़ने को भी ...स्त्र अपेक्षित होते हैं इस कुतर्क का यह उत्तर है कि तीव्र ... खेल में भी निर्बल के आधीन नहीं होते हैं, सर्वदा ...ते हैं ॥ १८ ॥

...हस्तं कमलबलिमाधाय पदयो-

यदेकोने तस्मिन्निजमुदहरन्नेत्रकमलम् ॥
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम् ॥ १६ ॥

टी० । हे त्रिपुरहर श्रीकृष्णा जी सहस्र कमल लेकर आपके चरणारविन्दों का पूजन करने लगे, करते २ एक कमल कमती देखकर भक्तिकी दृढ़तासे अपना नेत्र रूपी कमल निकाल कर पूर्ण पूजन करतेभये, श्रीकृष्णजीकी यह दृढ़ भक्ति सुदर्शन चक्र का रूप धारण कर तीनों लोकों की रक्षा कर रही है ॥ १६ ॥

क्रतौ सुप्ते जाग्रत् त्वमसि फलयोगे क्रतुमतां
क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते ॥
अतस्त्वां संप्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुवं
श्रुतौ श्रद्धां बध्वा दृढपरिकरः कर्मसु जनः ॥ २० ॥

टी० । हे भगवन् ! आपही को यज्ञके फलदाता स[illegible] कर और वेद में दृढ़ विश्वास कर मनुष्य कर्मों का आरम्भ[illegible] हैं क्योंकि जब क्रियारूप यज्ञ समाप्त हो गया तो आपही [illegible] मान रहते हो कदाचित् कहो कि नष्ट कर्म ही फल[illegible] निश्चय है कि चैतन्य पुरुष आराधन बिना नष्ट कर्म[illegible] नहीं हो सक्ता आशय यह कि कर्ममात्र के फलदाता आ[illegible]

क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृता

मृषीणामार्त्विज्यं शरणद सदस्याः सुरगणाः ॥
क्रतुभ्रंशस्त्वत्तः क्रतुफलविधानव्यसनिनो
ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः ॥ २१ ॥

टी० । क्रिया में कुशल दक्ष प्रजापति सो तो यज्ञकर्ता और जिसकी सभा में ब्रह्मा आदि देवताओं के समूह के समूह और बड़े २ ऋषि जिस में आचार्य अर्थात् यज्ञ कराने वाले थले इतने पर भी जो यज्ञ बिगड़ जाय तो आश्चर्य है सो हे भगवन् ! आपकी ओर अश्रद्धा ही बिगाड़ का कारण है क्योंकि कर्ममात्र के फलदाता आपही हो तुम्हारी श्रद्धारहित जितना कर्म किया जाय सब निष्फल होगा ॥ २१ ॥

...ानाथं नाथ प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं
...ं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा ।
...ष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुं
...त्तं तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः ॥२२॥

...टी० । किसी समय ब्रह्मा काम के वश हो रमण की इच्छा ...पनी कन्या के ऊपर दौड़ा तब वह कन्या अधर्म के भय ...कर भाग चली कि उसी समय ब्रह्मा ने भी मृग का ...कर पीछा किया । सो हे भगवन् ! उस समय आ... ...अनीति देखकर उस मृग के ऊपर जो धनुष हाथ में

लेकर आवेः का उत्साह किया तो वह बूढ़ा स्वर्ग तक भागा परन्तु आप के धनुष ने आज तक पीछा नहीं छोड़ा, है । आश्चर्य यह है कि आप का धनुष बाण अन्यायी का पीछा कभी नहीं छोड़ता ॥ २२ ॥

स्वलावण्याशंसा धृतधनुषमह्नाय तृणवत्
पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन पुष्पायुधमपि ॥
यदि स्त्रैणं देवी यमनिरतदेहार्द्धघटना
दवैति त्वामद्धा बत वरद मुग्धा युवतयः ॥ २३ ॥

टी० हे भगवन् आपने जो धनुषधारी कामदेव को शीघ्र ही भस्म किया फिर उसका आधा शरीर उत्पन्न कर अपने शरीर में धारण किया यह चरित्र देखकर निज स्वरूपाभिमानिनी पार्वती जी आपको व्यभिचारी कहतीहैं क्योंकि कामदेवको भस्म किया और फिर उत्पन्न कर अपने शरीर में धारण किया. परन्तु हे भगवन् आप में यह दोष लगाना यथार्थ में सत्य नहीं है क्योंकि युवती स्त्री अज्ञान होती हैं उनके कहने का क्या ठीक है २३ ॥

स्मशानेष्वाक्रीड़ा स्मरहर पिशाचाः सहचरा-
श्चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः ॥
अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं
तथापि स्मर्तॄणां वरद परमं मंगलमसि ॥ २४

टी० । हे भगवन् यद्यपि आपका स्थान और आभूषणादि अमंगल पदार्थ हैं जिनके देखने वा सुनने में मन को ग्लानि और भय होता है जैसा कि स्मशान तो खेलने का स्थान खिलाड़ी भूत पिशाच आदि, आभूषण चिता का भस्म शरीर में लगा हुआ, मनुष्यों की खोपड़ियों वा सर्पों की माला पहिरे हुए ये सब अमंगल हैं तौ भी शिवका रूप स्मरण करने वालों को आप सर्वदा मंगलरूप ही दृष्टि आते हो ॥ २४ ॥

मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमविधायात्तमरुतः
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्संगितदृशः
यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्यामृतमये
दधत्यंतस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत्किल भवान् ॥२५॥

टी० । हे भगवन् योगी जन प्राणवायु को रोक कर और आत्मा में अन्तःकरण को ठहराय अनिर्वचनीय तत्व को देख कर [आ]नन्द करते हैं इसी आनन्द से उनके रोमांच प्रफुल्लित होय और नेत्र तप्त भये मानो अमृतरूप हृदय में स्नान कर आनन्द के रहे हैं वह अनिर्वचनीय तत्व आपही का स्वरूप है ॥ २५ ॥

[..]स्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-
[..]त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च
[..]मेवं त्वयि परिणता बिभ्रति गिरं

न विद्मस्तत्त्वं वयमिह तु यत्त्वं न भवसि ॥ २६ ॥

टी०। हे भगवन्! सूर्य चन्द्रमा वायु अग्नि जल आकाश पृथ्वी आत्मा आदि जितने जड़ व चेतन पदार्थ हैं तुम्हारे ही स्वरूप हैं परिपक्वमतिवाले तुम्हारे विषय में इतना ही वर्णन कर सके हैं आगे को उनका बुद्धिबल चल नहीं सकता आशय यह कि ऐसा कोई पदार्थ हम नहीं देखते जिसमें तुम व्यापक न हो ॥ २६ ॥

त्रयी तिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरा-
नकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृतिः ॥
तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः
समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद गृणात्योमिति पदम् ॥२७॥

टी। हे भगवन्! ॐ यह पद सब पदार्थों में व्यापक होके अर्थात् अकार आदि वर्णों करके तीनों वेद तीनों वृत्ति उदात्त अनुदात्त स्वरित तीनों लोक स्वर्ग मृत्यु पाताल ब्रह्मा विष्णु रुद्र तीन देवता इनको धारण करता हुआ और आपका जो चौथा निर्विक[illegible] धाम है जिसको तुरीय कहते हैं उसको भी ग्रहण करता [illegible] आपकी स्तुति करता है ॥ २७ ॥

भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सह महां-
स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम्

अमुष्मिन् प्रत्येकं प्रविचरति देवश्रुतिरपि
प्रियायास्मै धाम्ने प्रणिहितनमस्योस्मि भवते॥२८॥

टी०। हे भगवन् भव १ शर्व २ पशुपति ४ उग्र ५ सहमहान् अर्थात् महादेव ६ भीम ७ ईशान ८, ये आप के आठ नाम हैं इनमें से प्रत्येक नाम से वेद आपही का गुण वर्णन करते हैं, प्रीति के निमित्त यथा भव नाम से उत्पत्ति कर्ता शर्व से नाश कर्ता रुद्र अर्थात् रोदनकर्ता पशुपति जीवमात्र के पालक उग्र से क्रोधकर्ता सहमहान् अर्थात महत्त्व विशिष्ट भीम अर्थात भयंकर ईशान से ऐश्वर्य विशिष्ट इस प्रकार आपका सगुण वर्णन करे हैं हे वेद के प्रिय शिव आपको नमस्कार करता हूं॥ २८॥

नमो नेदिष्ठाय प्रियदव दविष्ठाय च नमो
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर महिष्ठाय च नमः॥
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन यविष्ठाय च नमो
नमः सर्वस्मै ते तदिदमिति शर्वाय च नमः॥ २९॥

टी०। हे भगवन् आप समीपवर्ती हो और दूरवर्ती भी हो [illegible] से सूक्ष्म और बड़े से बड़े रूप को धारण करते हो इत्यादि [illegible] को धारण करते हो सब रीति पर तुमको नमस्कार [illegible]॥

[illegible]से विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः

प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः ।
जनसुखकृते सत्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नमः
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ॥३०॥

टी० । संसार के उत्पत्ति के समय आपने रजोगुण सहित रूप धारण किया और सृष्टि के पालन करने को सत्वगुण सहित मृड रूप अर्थात् सुखकारी और प्रलय करने के समय तमो गुण सहित हर रूप धारण किया मोक्षके समय तीनों गुणों करके रहित अर्थात् निर्गुण शिव शांतरूप धारण किया, हे भगवन् ! आपके अनेक रूपों को नमस्कार है ॥ ३० ॥

कृशपरिणति चेतः क्लेशवश्यं क्व चेदं
क्व च तव गुणसीमोल्लंघिनी शश्वदृद्धिः ।
इति चकितममन्दीकृत्य मां भक्तिराधाद्
वरद चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम् ॥ ३१ ॥

टी०।हे भगवन् आपके गुणों का तो पार नहीं और मेरा चित्त रागद्वेष आदि क्लेश वश हो के परिणाम में दुर्बल है इस प्रकार जब मैं गुणों के वर्णन से भयभीत हुआ तब मेरी भक्तिने उत्साह करवाकर वाणीरूपी फूलों की माला आप के चरणारविन्दों पहरवा दी । आशय यह है कि पुष्पदन्ताचार्य कहते हैं कि सामर्थ्य नहीं जो आपके गुणों का वर्णन करूं परन्तु मे

जिनके गुण ऐसे शिवजी की स्तुति अति मनोहर विस्तृत श्लोक से की है ॥ ३३ ॥

अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेतत्
पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान यः ॥
स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यः सदात्मा
प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान् कीर्तिमांश्च ॥ ३४ ॥

टी० । श्रीमहादेव जी के इस निर्दोष स्तोत्रको जो मनुष्य शुद्ध चित्त होके परम भक्ति से नित्य प्रति पढ़ैगा वह शिव लोकमें रुद्र के तुल्य गिना जायगा और इस लोक में धन संतान अवस्था कीर्ति बहुत पावेगा ॥ ३४ ॥

दीक्षा दानं तपस्तीर्थं ज्ञानयागादिकाः क्रियाः ॥
महिम्नस्तवपाठस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ३५ ॥

टी० । दीक्षा और दान तप तीर्थ करना ज्ञान यज्ञ आ[illegible] कर्म जो हैं वे महिम्न स्तोत्र के पाठसे जो फल प्राप्त होत[illegible] उसके सोलहवें भाग के भी तुल्य फल नहीं देते ॥ ३५ ॥

समाप्तं तदिदं स्तोत्रं सर्वमीश्वरवर्णनम्।
अनूपमं मनोहारि पुण्यं गन्धर्वभाषितम् ॥

टी० । गन्धर्व अर्थात् पुष्पदन्ताचार्य का क[illegible]
सम्पूर्ण महिम्न स्तोत्र बड़ा पुण्यकारी है इसके तुल्य

मनोहर स्तोत्र नहीं इसमें सब जगह ईश्वर का ही वर्णन है ॥ ३६ ॥

महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः ।
अघोरान्नापरो मंत्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥३७॥

टी० । महादेव जी से बड़ा कोई देवता नहीं और महिम्न स्तोत्र से बड़ा कोई स्तोत्र नहीं अघोर मन्त्र से बड़ा कोई मन्त्र नहीं और गुरू से अधिक कोई तत्त्व नहीं ॥ ३७ ॥

कुसुमदशननामा सर्वगंधर्वराजः
शशिधरवरमौलेर्देवदेवस्य दासः
स खलु निजमहिम्नो भ्रष्टएवास्यरोषात्
स्तवनमिदमाकार्षीद्दिव्यदिव्यं महिम्नः ॥ ३८ ॥

टी० । वे पुष्पदन्ताचार्य जो पहिले गंधर्व योनि में कुसुमदशन नाम गंधर्व थे किसी समय एकान्त में शिव जी और पार्वती जी की आनन्द की बातें छिप कर सुनने लगे तो शिवजी ने देखतेही इनको यह शाप दिया किजाओ तुम इस गंधर्व पदवी से पतित होकर मनुष्य लोक में जन्म लो तब इन्होंने यहां जन्म लेकर परम दिव्य इस महिम्न स्तोत्र से शिवजी को अत्यन्त प्रसन्न कर वांछित फल प्राप्त किया ॥ ३८ ॥

सुरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं
पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्यचेताः ।

व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः
स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्तप्रणीतम् ॥ ३९ ॥

टी० । पुष्पदन्ताचार्य का कथित जो निर्दोष महिम्न स्तोत्र वह कैसा है कि देवता और मुनियों करके पूजित और स्वर्ग मोक्ष प्राप्ति का मूल कारण है ऐसे स्तोत्र को जो मनुष्य स्थिर चित्त होके हाथ जोड़ कर पढ़ता है वह शिव जी के समीप प्राप्त होता है उसकी स्तुति किन्नर गंधर्व आदि करते हैं ॥ ३९ ॥

श्रीपुष्पदन्तमुखपङ्कजनिर्गतेन
स्तोत्रेण किल्बिषहरेण हरप्रियेण ।
कंठस्थितेन पठितेन समाहितेन
सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः ॥ ४० ॥

टी० । श्रीपुष्पदन्ताचार्य के मुखारविंद से कहा हुआ जो यह पापनाशक महिम्नः स्तोत्र है चित्त लगा कर इसके कण्ठ पाठ करने से भूतपति श्रीमहादेवजी अत्यन्त प्रसन्न होते हैं क्योंकि शिवजी को यह स्तोत्र अत्यन्त प्रिय है ॥ ४० ॥

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं नित्यमुत्पठेत् ॥
भवपाशविनिर्मुक्तः शिवलोकं स गच्छति ॥

टी० । जो मनुष्य इस महिम्न स्तोत्र को एक बार

बार वा तीन बार नित्य पढ़ेगा वह संसार की फांस से छूट कर शिवलोक में प्राप्त होगा ॥ ४१ ॥

इत्येषा वङ्मयी पूजा श्रीमच्छङ्करपादयोः ॥
अर्पिता तेन मे देवः प्रीयतां च सदाशिवः ॥ ४१ ॥

इति श्रीपुष्पदन्ताचार्यकृत
शिवमहिम्नःस्तोत्रं
समाप्तम् ।

यहस्तोत्ररूपी पूजा श्रीमहादेवजी के चरण कमल पर मैंने (पुष्पदन्ताचार्य) चढ़ाई । इस से श्रीसाम्ब सदाशिव मुझपर सन्तुष्ट हों ।
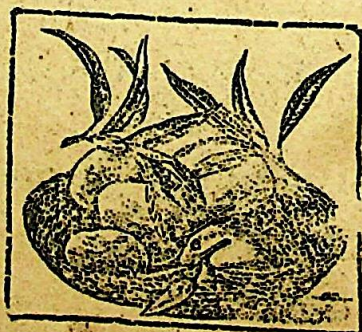
६२. दारिद्र्यदहनशिवस्तोत्रम् ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ विश्वेश्वराय नरकार्णवतारणाय कर्णामृताय शशिशेखरधारणाय। कर्पूर कांतिधवलाय जटाधराय दारिद्र्य दुःखदहनाय नमः शिवाय ॥ १ ॥ गौरीप्रियाय रजनीशकलाधराय कालान्तकाय भुजगाधिपकंकणाय । गंगाधराय गजराजविमर्दनाय दारिद्र्य० ॥ २ ॥ भक्तिप्रियाय भवरोगभयापहाय उग्राय दुर्गभवसागरतारणाय। ज्योतिर्मयाय गुणनामसुनृत्यकाय दारिद्र्य० ॥ ३ ॥ चर्माम्बराय शवभस्मविलेपनाय भालेक्षणाय मणिकुंडलमंडिताय। मंजीरपादयुगलाय जटाधराय दारिद्र्य० ॥ ४ ॥ पंचाननया फणिराजविभूषणाय हेमांशुकाय भुवनत्रयमंडि ताय। आनंदभूमिवरदाय तमोमयाय दारिद्र्य० ॥ ५ ॥ भानुप्रियाय भवसागरतारणाय कालांतकाय कमलासनपूजिताय ॥ नेत्रत्रयाय शुभलक्षणलक्षिताय दारिद्र्य० ॥ ६ ॥ रामप्रियाय रघुनाथवरप्रदाय नागप्रियाय नरकार्णवतारणाय । पुण्येषु पुण्यभरिताय सुरार्चिताय दारिद्र्य० ॥ ७ ॥ मुक्तेश्वराय फलदाय गणेश्वराय गीतप्रियाय वृषभेश्वरवाहनाय। मातंगचर्मवसनाय महेश्वराय दारिद्र्य० ॥ ८ ॥ वसिष्ठेन कृतं स्तोत्रं सर्वरोगनिवारणम् । सर्वसंपत्करं शीघ्रं पुत्रपौत्रादिवर्धनम् । त्रिसंध्यं यः पठेन्नित्यं स हि स्वर्गमवाप्नुयात् ॥ ९ ॥ इति श्रीवसिष्ठविरचितं दारिद्र्यदहनस्तोत्रं संपूर्णम् ॥

पुस्तक मिलने का पता :-

मैनेजर-भार्गव पुस्तकालय

चौक बनारस सिटी ।